मनुष्य बनो

स्त
१९८६

S/1681

बा० मू०
१२.००

शरणागति, शुभ संकल्प,

क्षमा,

प्रेम,

निष्काम कर्म, ब्रह्मचर्य पालन,

क्षक
दयाल फकीरचन्दजी महाराज
मानवता मन्दिर होशियारपुर (पंजाब)

'मनुष्य बनो' के नियम

१—शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिकता के नियमों का वास्तविक दृष्टिकोण से प्रचार करना और प्रेम, सभ्यता, आदर, शिष्टाचार, सदाचार, सहनशीलता और संयम की शिक्षा देना इसका मुख्य उद्देश्य है मनुष्य बनना और बनाना।

२—सन्त महात्माओं और ऋषियों की वाणी को सरल, सुबोध और साधारण भाषा में प्रचार करना।

३—सामाजिक उन्नति कारक तथा देशहित कारक लेखों को भी स्थान दिया जायेगा।

४—किसी धर्म पन्थ या सम्प्रदाय के खण्डन सम्बन्धी लेख नहीं छापे जायेंगे।

५—यह पत्र प्रत्येक मास की १५ तारीख को प्रकाशित हुआ करेगा।

६—लेखों के घटाने बढ़ाने और छापने न छापने का अधिकार सम्पादक को होगा। लेख सम्पादक के नाम भेजे जांय।

७—ग्राहकों को पत्र लिखते समय ग्राहक नम्बर व पता साफ-साफ अवश्य लिखना चाहिए। उत्तर के लिये जवाबीकार्ड आना चाहिए वी० पी०पी० से पत्रिका नहीं भेजी जायेगी। इसका वार्षिक मूल्य १५.०० है।

८—यदि किसी मास का पत्र ठीक समय पर न पहुंचे तो पहले अपने यहाँ डाकखाने से पूछताछ करके वहां से जो उत्तर न मिले व अगला अंक निकलने के एक सप्ताह पूर्व तक कार्यालय में पहुंचने पर ही दूसरी प्रति बिना मूल्य भेजी जा सकेगी।

९—प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होने की सूचना, मनीआर्डर आदि मैनेजर के नाम से भेजनी चाहिए। मनीआर्डर कूपन पर अपना पता साफ-साफ लिखना चाहिए। और पते की तबदीली भी।

—प्रकाशक

R. S.

ओ३म पूर्णमद पूर्णमिदं: पूर्णात्पूर्णमदुच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते ॥

मनुष्य बनो

वर्ष ३७	अगस्त १९८९	अङ्क ११

वन्दना

चरण शरण की वन्दना नित कोई और न काम।
गुरू बसो चित्त आय मेरे वख्श दो निज नाम।

तेरी शरणागत हुआ जब जिसकी राखूं आस।
आस तो तेरी दया की जग से रहूं उदास।

रूप धारूं नाम गाऊं शब्द राता मन।
आठों जाम तेरा ही सुमिरन भाग मेरा धन।

शीश पुर निज कर कमल धर लिया शरन लगाय।
पतित पापी तर गया गुरू शरन तेरी आय।
मुक्ति की नहीं चाह मन में भक्ति प्यारी लाग।
राधास्वामी की दया से भाग पूरन होय।

—:०:०—

मासिक सन्देश

परम सन्त परम मानव हजूर मानव दयाल
डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज !

मेरे परम प्रिय सत्संगियों !

राधास्वामी !

परमदयाल जी सहाई !

जहाँ तक मानवता मन्दिर और सत्संगियों की गतिविधि का सम्बन्ध है, १४ मई को हमेशा की भांति मानवता मन्दिर के बड़े सत्संग भवन में सत्संग आयोजित हुआ। इसी प्रकार मासिक सन्देश और सत्संग लिखने का कार्यक्रम भी सुचारू रूप से चलता रहा। मेरा अधिकतर समय मानवता मन्दिर में ही व्यतीत हुआ। बिलारी के सत्संगियों ने काफी समय से आग्रह किया था कि करीब दो वर्ष से मेरा वहाँ जाना नहीं हुआ इसलिये मुझे वहाँ अवश्य जाना चाहिए। इसलिये मई के महीने में २०, २१ और २२ को मैंने बिलारी के सत्संगों का प्रोगाम बनाया। वहाँ के सभी सत्संगियों ने बड़े उत्साह और श्रद्धा से सत्संगों में भाग लिया। उनके प्रेम से प्रभावित होकर मैंने उन्हें वचन दिया कि पहली जुलाई १९८९ को मैं फिर

बिलारी जाऊंगा। इस सूचना से सारे सत्संगी गदगद हो गये २१ मई रात्रि को ही भाग्यमाता जी की तबियत अचानक खराब हो गई। वहां के डाक्टर ने बताया कि उन्हें हल्के हैजे की शिकायत थी। दवाई लेने से कुछ आराम मिला। किन्तु जब हम २२ मई रात्रि को दहली पहुँचे, तो उनकी बीमारी बढ़ गई। राजपुर रोड के निकट तीरथराम हस्पताल में भर्ती कराना पड़ा। वहाँ के सबसे बड़े डाक्टर जोशी ने उनका इलाज किया। और दो दिन ग्लूकोज चढ़ाने के बाद अल्ट्रा-साउन्ड एक्सरे निदान के द्वारा यह पता चला कि उनका असली रोग हैज़ा नहीं था बल्कि उनके पित्त में बहुत सी पथ-रियां रोग का कारण थी।

इस निदान से एक लाभ यह हुआ कि रोग के कारण का पता चल गया। और उसी के अनुसार चार-पाँच दिनों में कई प्रकार के इन्जेक्शन लगाए गये। दौरे के प्रोग्राम के मुताबिक मुझे २८ मई को जयपुर, २९, ३०, ३१ मई को भीलवाड़ा और पहली जून को अलवर में सत्संग देने थे। किन्तु इस अनिवार्य परिस्थिति के कारण मैंने अलवर और भीलवाड़ा के प्रोग्रामों में सम्मिलित न होने का निश्चय किया। मैं केवल जयपुर गया। मैंने आचार्य शब्दानन्द को सत्संग के लिये भीलवाड़ा भेजा। इस प्रकार से राजस्थान के सत्संगियों को कुछ निराशा तो अवश्य हुई किन्तु भाग्यमाता जी की बीमारी को सुनकर उनको सहानुभूति अवश्य हो गयी। मैं २९ मार्च को वापस देहली पहुंचा। और उसी दिन भाग्यमाता जी को अस्पताल से छुट्टी मिली। किन्तु डाक्टर ने चेतावनी दी कि उनके

पित्त का आपरेशन बहुत जल्दी हो जाना चाहिए। हम २ जून को चण्डीगढ़ होते हुए सायंकाल होशियारपुर पहुचे। चण्डीगढ़ में मेरे प्यारे डाक्टर ओंकार नगेश नेगी ने माताजी के स्वास्थ्य की जाँच के बाद परामर्श दिया कि आपरेशन में जल्दी करने की आवश्यकता नहीं है। इसलिये हमने यह निश्चय किया कि गुरू पूर्णिमा के बाद विदेशी दौरे के दौरान में उनका आपरेशन अमेरिका में ही कराया जाये।

जून के महीने में दो महत्वपूर्ण गतिविधियाँ हुई। ११ जून का मासिक सत्संग विशाल रूप से आयोजित हुआ। मुझे बार-बार यह बताते हुए होता है कि होशियारपुर में दैनिक और साप्ताहिक सत्संगों में भी सत्संगियों और गैर संत्संगियों की संख्या बढ़ती चली जा रही है।। संत्संगियों की जिज्ञासा प्रेम और श्रद्धा उत्तरोतर उन्नति कर रही है हालाँकि अधिक तर सत्संगी केवल इस लोक को सुधारने के लिये और सुखमय जीवन व्यतीत करने के लिये ही सदगुरू के दरबार में आते है लेकिन मुझे इस बात का गौरव है कि पहले के मुकाबले में बहुत अधिक संख्या में सत्संगी परमार्थ के लिये भी मानवता मन्दिर के सत्संगों में भाग लेते हैं। परम दयाल जी महाराज ने जिस भेद को सत्संगियों की भलाई के लिए खुले शब्दों में बताया, वह ये था कि जब सत्संगियों को अच्छी कठिनाइयों में, उनकी बीमारियों में और उनकी सुरत ऊपर चढ़ाने के समय गुरू का जो रूप प्रकट होता है वह केवल उनके मन की एकाग्रता के कारण ही होता है उस रूप के प्रकट होने का आभास गुरू विशेष को नहीं होता। जब इस सचाई को नहीं बताया जाता तो सत्संगी गुरू के शरीर को ही सदगुरु मान लेते हैं। और उसके डेरे से जुड़ जाता है। ऐसा करने से दो दोष पैदा

होते हैं। एक दोष तो ये है कि सत्संगी का गुरू के स्थूल शरीर से मोह हो जाता है। इसलिये जब वह गुरू के स्थूल शरीर को सब कुछ समझकर मरते समय उसी स्थूल शरीर में मोह रखता है तो वह ऊपर के लोकों में नहीं जा सकता। उसको वार-बार गुणात्मक जगत में जन्म लेना पड़ता है। दूसरा दोष ये है कि वह सदगुरू को अविनाशी पूर्ण और व्यापक नहीं मानता। कबीर साहब ने कहा है:—

गुरू किया है देह को, सत्गुरु चीन्हा नाँहि।
कहै कबीर ता दास को तीन ताप भर माँहि॥

अर्थात गुरू को केवल स्थूल शरीर मानने से उसके अविनाशी और व्यापकरूप को आँखों से ओझल कर देने से सत्संगी चौथे पद पर नहीं पहुँच सकता और वह शरीर के दुःख, मन की व्याकुलता और आत्मा की अज्ञानता में फंसा रहता है। ये कह देने से कि गुरू का स्थूल रूप असली रूप नहीं है कुछ अज्ञानी सत्संगियों के विश्वास में कमी ला सकता है। परम दयाल जी ने कहा था कि मैंने ये सच्चाई बताकर सत्संगियों के अन्ध विश्वास पर ठेस लगाई है। उनका कहना था कि इसी कारण मानवता मन्दिर को आर्थिक लाभ नहीं होगा। यदि वे इस सच्चाई को छिपाते तो सम्भवतया दूसरे डेरों की भाँति मानवता मन्दिर में भी लोग अन्ध विश्वास के आवेश में करोड़ों रुपये अनुदान देते। यद्यपि परमदयाय जी महाराज का यह विचार कुछ सीमा तक ठीक था तथापि मेरा यह अनुभव है कि इससमय बहुत लोग इस सच्चाई की सराहना करते हैं और सच्चे दिल से मानवता मन्दिर को यथा शक्ति अनुदान दे रहे हैं। उसका कारण यह है कि मैंने भी इस सच्चाई पर प्रकाश डाला है कि मेरा जो स्थूल रूप सत्संगियों होता है, वे

मेरा निज रूप नहीं है बल्कि मेरी छाया की छाया है। मैं मैं जितना अधिक इस सच्चाई को बयान करता हूँ। सत्संगियों को मेरे रूप के प्रकट होने का उतना अधिक लाभ होता है। अब सत्संगी इस बात को समझने लगे हैं कि यदि वे मेरे शारीरिक और मानसिक रूप से प्यार करके चमत्कारी अनुभव कर सकते हैं, तो जब वे मेरे अविनाश परम पत्व रूप को निःस्वार्थ प्यार करगे, तो वह स्वयं अविनाशी बन जायेंगे।

इसी उद्देश्य से ही मैं हर एक सत्संग में, सरल से सरल भाषा में विश्वास के आधार पर और गुरू के रूप को बताने की कोशिश करता हूं। पिछले ८ वर्षों में मेरे अनुभव ने ये साबित कर दिया है कि बहुत से सच्चे सत्संगी न ही केवल दुनियावी लाभ के लिये, बल्कि सच्चा ज्ञान प्राप्त करने के लिये मानवता धर्म की तरफ आकर्षित हो रहे हैं और गुरू को ज्ञान दाता मानते हुये, मानवता मन्दिर को पर्याप्त अनुदान भी देते हैं। यद्यपि मानवता मन्दिर और मानव मन्दिर के प्रकाशन का खर्चा चौगुना हो गया है, फिर भी हर वर्ष हमारे बजट में कमी नहीं रहती। हम यह तो नहीं कह सकते कि मानवता मन्दिर को अनाप-शनाप धन राशि प्राप्त होती है, फिर भी मन्दिर की सारी गतिविधियों स्कूल, चिकित्सालय, गरीबों की सहायता तथा मानव मन्दिर के प्रकाशन में हर वर्ष खर्चा अवश्य पूरा हो जाता है। हमारी परम्परा में सत्संगियों से अनुदान माँगने की प्रथा नहीं है। हम यह नहीं चाहते कि लोग अपने अन्ध विश्वास के कारण चमत्कारों का अनुभव करने के बाद इस दृष्टि से मन्दिर को पैसा भेजें कि मेरा रूप उनकी सहायता करता है। हाँ, यदि सत्संगी सच्चे दिल से महसूस करते हैं कि जिस दृष्टि से सन्तमत एवं राधास्वामी

मत को सत सनातन धर्म के विकास को आखरी सीढ़ी साबित करते हुए मेरा आध्यात्मिक अनुभव मत-मतान्तरों के भेद भाव को दूर करके, मानव मात्र को एक आध्यात्मिक बिन्दु लाकर खड़ा कर सकता है और इस प्रकार विश्व में धर्म के नाम पर झगड़ों को समाप्त कर सकता है,तो उनका यथाशक्ति भेजा हुआ अर्थिक अनुदान खुशी से स्वीकार किया जायेगा।

आपका मानव बढ़ रहा है जगह-जगह पर नये-नये मानवता मन्दिर स्थापित किए जा रहे हैं इन सबके लिये पैसे की जरूरत तो रहेगी ही।

मानवता मन्दिर से सम्बन्धित ऐसे सत्संगियों की कमी की कमी नहीं है श्री के० एल० जैन, इंग्लैण्ड के श्री प्रकाश चौहान जैसे श्रद्धालु और बुद्धिमान सत्संगी अपने आप ही मानवता मन्दिर को इसलिये सहायता देते हैं, क्योंकि उन्हें गुरू के अविनाशी रूप का और उसकी व्यापकता का अनुभव हो चुका है। समय और स्थान की कमी के कारण मैं दहली के श्री के० एल० जैन के द्वारा श्रद्धापूर्ण प्रेममय और सद्-भावनाओं से ओत प्रोत पत्र को यहाँ प्रस्तुत नही कर रहा। किसी दूसरे अवसर पर मैं इनके सम्बन्ध में, मासिक सन्देश में विस्तार पूर्वक लिखूंगा। परमदयाल जी महाराज के ऐसे ज्ञानभक्ति रामगढ़ हरियाणा के स्व० श्री जगन्नाथ थे जिन्होंने जीते जी जीवन मुक्ति पा ली थी। और सन्तगति में रहते थे इसी कारण इनका सारा परिवार इनके भाई-भतीजे, बेटे व दामाद जो हरियाणा और पंजाब में फैले हुए हैं। परमदयाल जी के प्रति और मेरे प्रति अगाध श्रद्धा रखते हैं। रामगढ़ में इनके सम्बन्धियो ने श्री जगन्नाथ जी का स्मारक बनाया है। हर वर्ष जून के महीने में वहाँ पर विशाल सत्संग और

भण्डारा होता है। इस अवसर पर यह श्रद्धालुपरिवार हमेशा मुझे आमन्त्रित करता है। गत वर्ष तो मैं जून के महीने में विदेशी दौरे पर था। इसलिए आचार्य शब्दानन्द जी ने मेरे स्थान पर सत्संग दिया था। इस वर्ष मैं स्वयं भाग्यमाता जी श्री आचार्य, श्री शब्दानन्द जी, कुमारी साधना सक्सैना और श्रीमती राजकुमारी आदि के साथ १४ जून को रामगढ़ गया रामगढ़ चण्डीगढ़ से केवल १८ किमी० की दूरी पर है जगन्नाथ जी के परिवार ने हमारे निवास का बहुत सुन्दर प्रबन्ध किया।

१५ जून प्रातःकाल श्री जगन्नाथ जी के स्मारक पर एक भारी मेला सा लगा। २ घण्टे तक सत्संग चला जिसमें सम्मिलित होने वाले सत्संगियों ने आनन्द प्राप्त किया। जगन्नाथ जी की पुण्य स्मृति में यह स्मारक देखते ही बनता है। मैं चाहता हूँ कि अगले वर्ष अधिक से अधिक सत्संगी इस अवसर पर रामगढ़ पहुंचें। इसलिए हम अगले वर्ष इस आयोजन की सूचना पहले से ही मानव मन्दिर में प्रकाशित कर देंगे।

हम १५ जून को ही भण्डारे के बाद रामगढ़ से रवाना होकर सायकाल ५ बजे लालरू होते हुए होशियारपुर पहुँचे गये। मैं २८ जून तक मानवता मन्दिर में रहा, क्योंकि पत्र व्यवहार, सत्संग और मासिक सन्देश आदि लिखने का काम बहुत इकटठा हो चुका था। मेरी दैनिक क्रिया प्रातःकाल ३ बजे से आरम्भ होती है। सारा दिन दैनिक सत्संग, दुःखी जीवों को परामर्श देने और लिखने-पढ़ने में व्यतीत हो जाता है। यद्यपि मैंने प्रातःकाल सत्संग के बाद ११ बजे तक सत्संगियों को मिलने का समय निश्चित कर रखा है और दोपहर

के खाने के बाद, दो-तीन घण्टे विश्राम के लिये भी निश्चित कर दिए हैं किन्तु प्रेम के वश में मुझे कई बार इस नियम को भंग करना पड़ता है। अनेक बार जब मैं थक-थकाकर दोपहर के विश्राम के लिये लेटता हूँ, तो चौकीदार ऊपर आकर संदेश देता है 'महाराज जी ! दूर के गाँव से दो सत्संगी आये हैं वह बहुत दुःखी हैं, आपका आशीर्वाद चाहते हैं।, इन शब्दों को सुनकर मैं उन्हें बिना बुलाये रह नहीं सकता। जब यह दुःखी श्रद्धालु भोले-भाले सत्संगी इस आशा से दोपहर को मानवता मन्दिर पहुंचते हैं कि उन्हें सदगुरु के दर्शन होंगे और उनका कष्ट दूर हो जायेगा। तो मैं उनके भावों पर आघात करके उन्हें कैसे निराश लौटा सकता हूँ मेरे प्यारे भोले-भाले सत्संगियो ! तुम्हारी श्रद्धा और तुम्हारा विश्वास तुम्हारा काम बनाता है। हाँ, आपके दुःख को देखकर मेरे मन में हिलोर पैदा होती है और मैं आपको सच्चे दिल से सदभावना देता हूँ यह प्रेम का मार्ग है प्रेम ही उसकी सीढ़ियाँ हैं और प्रेम ही उसकी मन्जिल है। प्रेम में कोई नियम नहीं होता। यही कारण है कि मैं आपके प्रेम से प्रेरित होकर अपने आपको खो बैठता हूं। मैं आपसे बातचीत करते समय, आपको परामर्श देते समय और मासिक सन्देश लिखते समय हमेशा महसूस करता हूं कि मैं आपके साथ एक हो गया हूं। आपके भाव मेरे भाव हो जाते हैं आपके विचार मेरे विचार हो जाते हैं। और आपके दुःख दर्द मेरे दुःख दर्द हो जाते हैं।

इस प्रकार मेरे मन में एक ऐसी हालत तारी हो जाती है जिसे उन्मुन अवस्था कहते हैं। यही राधास्वामी हालत है। जिसको पाने के लिये सुमिरन ध्यान व भजन किया जाता है मुझे यह अवस्था आपकी सेवा करते समय मिल जाती है।

परमदयाल जी महाराज आपको अपना गुरू मानते थे, मैं आपको अपना इष्ट मानता हूँ। इस सम्बन्ध में और कर्म के सम्बन्ध में अगले मासिक सन्देश में चर्चा की जायेगी। समय और स्थान के अभाव के कारण मैं इस 'मासिक सन्देश' को सहसा यहीं समाप्त कर रहा हूं। मैं जानता हूँ कि आपको यह अच्छा नहीं लगेगा क्योंकि आप मेरा सन्देश पढ़ते समय अपने आपको भूल जाते हैं और प्रममय हो जाते हैं। हमारा यह परस्पर प्रेम का अनुभव हमेशा बना रहेगा। मैं आपको यह सन्देश १७ जुलाई को लिख रहा हूं। कल गुरू पूर्णिमा है। सैकड़ों सत्संगी दूर-दूर से मानवता मन्दिर में आ चुके हैं। मैंने प्रातःकाल ५ बजे इस मासिक सन्देश को लिखवाना आरम्भ किया था। ६ पृष्ठ तक तो यह सन्देश कल सायंकाल तक ही समाप्त हो चुका था। मुझे पूरी आशा है कि आप मेरे सच्चे प्रेम के भावों को अगले मासिक सन्देश में पढ़ने की प्रतीक्षा करेंगे। यह प्रतीक्षा भी आपको आनन्द देगी।

इन शब्दों के साथ मैं आप सबको सच्चे दिल से सद्भावना प्रेम, आशीर्वाद और राधास्वामी प्रेषित करता हूं और चाहता हूं कि आप इस महीने में भी शारीरिक स्वास्थ्य व मानसिक सुख और आत्मिक आनन्द और परम शान्ति का अनुभव करें।

सबको राधास्वामी !

आपका फकीरमय

मानव

—:o:—

गतांक का शेष

का पतन हो जाता है। इसके विरुद्ध योगियों ने भू भुवः स्वः महः जनः तपः व सत्यम् के आध्यात्मिक स्थान बता कर इन को उन्नति का राजमार्ग दिखा दिया मगर लोग अनभिज्ञ हो गये और वह विद्या अनुपयोगी बना दी गई। याद इसी का अभ्यास चालू रहता तब भी लाभ होता, मगर कठिनाई तो ये है कि किसी को इनका ज्ञान तक नहीं कि इनका अभिप्राय क्या है। लोग प्रतिदिन गायत्री का पाठ करते समय प्राणायाम का यह मन्त्र पढ़ते हैं मगर समझ-बूझ खाक नहीं है। राधा-स्वामी मत उन्नति का साधन है। वह बतलाता है 'किसी एक स्थान पर न ठहरो वरना काम न बनेगा। चले-चलो, बढ़ते चलो और बिना ध्रुव पद तक पहुंचे हुए चैन न लो और तुम्हारी पहुंच इष्ट पद तक हो जायेगी।

सहस कंवल दल डेरा डालो, जोत में जोत मिलाओ।
जोत निरंजन जोती झलके घंटा शंख बजाओ ॥१॥
जोत शब्द की निरख परख में, गुरु का ध्यान लगाओ।
मेघा बरसे बिजली चमके अमृत धार नहाओ ॥२॥
बिन जल बूंद पड़े जहाँ भारी, न्हाय-२ तृप्ताओ।
रिमझिम-रिमझिम बादल बरसे, मेघनाद चित लाओ ॥३॥
चाँद सूर्य बिन जहां उजियारा सो प्रकाश लखिधाओ।
मोती पोहो गगन मंडल में, बिन सुर शब्द सुनाओ ॥४॥
त्रिकुटी जाय 'सोम' रस पाओ, पिओ अमीरस सारा।
यह निज वेद श्रुति स्थाना, मूल कलाम विचारा ॥५॥
यह पद जब कोई साधू परसे, दरसे सत ओंकारा।
प्रणव शब्द सुन मंगल गावे, यह है गुरु दरबारा ॥६॥
सेत बन्द रामेश्वर सागर, ब्रह्मनाद चिकारा।
मेघनाद इन्द्रिय जित रावन, मार करो संहारा ॥७॥

त्रिकुटी छोड़ चलो आगे को, सुन्न महासुन्न झारा।
अटल समाधि की तारी लागी, सो पद दसवाँ द्वारा ।।८।।
गढ़ कैलाश ब्रह्मरेन्द्र की चोटी मानसरोवर धारा।
हंस निरन्तर मोती चूगे, पुरुष प्रकृति बिहारा ।।९।।
सुन्न छाड़ सोहंग पद आवे भंवर गुफा को खिड़की।
मुरली बजे सोहंगम धुनि में,सहजहि बिजली कड़की ।।१०।
सोहं सोहं हन्स की वाणी, सोहं उल्टा हंसा।
जो कोई मरम गुरु का पावेसुफल तासु शुभ बंसा ।।११।
सत पद बीन सुनी लौ लाई, सत पुरुष घर बासा।
देखा रूप अगाध अपारा, अद्भुत अजब तमाशा ।।१२।।
अलख अगम के पार ठिकाना,राधास्वामी धाम समाने।
मन बानी गम की नहि जामें, समझ-समझ हरषाने । १३।।
जा पर दया गुरु की होई, सो पहुचे दरबारा।
राधास्वामी राधास्वामी छिन-छिन भाष, राधास्वामी
अगम अपारा ।।१४।।

फिर उसी पुस्तक से उधृत है--

'सुरत यानी जीवात्मा या रूह जो खास सत्पुरुष राधास्वामी की अन्श है इस देह में एक बड़ा जौहर है कि जिसको ताकत से बदन व मन और इन्द्रियाँ वगैरह-वगैरह अपना काम देती हैं।

सो सन्तों ने इसी जौहर को छाँट करके उसके असली भंडार और खजाने की तरफ मुतवज्जह किया और इसकी सच्ची तवज्जह उधर को हुई। तब आहिस्ता-आहिस्ता इसकी हालत भी बदलती जाती है और दुनियाँ और इसके पदार्थ रोज-बरोज नजर में ओछे और हकीर दिखाई देते हैं। इस जौहरे लतीफ का असल मुकाम कयाम यानी ठहराव का पिंड यानी जिस्म में आँखों के पीछे है और वहाँ से यह तमाम देह में फैला है

सब ऐजा की ताकत दे रहा है। इसका भण्डार और खजाना आदि शब्द या आदि नाम है।

राधास्वामी मत के त्रय स्तम्भों का संक्षिप्त वर्णन करके अब सत पद के पर्दे खोलने की कोशिश की ओर दृष्टि है। (१) सुरत और (२) उसके असली भण्डार की ओर ध्यान आकर्षित किया जा रहा है।

वेदान्त जिसको आत्मा अथवा जीवात्मा कहता है और सूफी जिसे रूह कहते हैं, सन्त मत में उसके लिये खास शब्द 'सुरत' गढ़ी गई है आत्मा और रूह दोनों यद्यपि इसकी असलियत को प्रकट नहीं करते मगर श्रेष्ठ शब्दों के न होने पर विवश इन्हीं पर निर्भर होना है। शब्द तो शब्द हीं हैं। अर्थ की ओर यदि ध्यान रहे तो गलती कम होती है। सन्तों ने अपनी समझ में उन शब्द से बेहतर शब्द सुरत गढ़ा है। सुरत तवज्जह को कहते हैं। प्राकृतिक जगत में तवज्जह ही सबसे बढ़कर तत्व (जौहर) है। यही सबका इत्र है। जब तक तवज्जह का झुकाव अन्य वस्तुओं की ओर है तब तक सुख दुःख और बन्धन है। जब तवज्जह का झुकाव निजस्वरूप (जात) की ओर अपनी, ओर अथवा निज भण्डार की ओर होता हैं तब उसमें उच्चकोट का आनन्द, बेपरवाही और निज रुपता आ जाती है। यह सब गुण उसमें पहले से ही विद्यमान है, मगर भ्रम धोखा अथवा स्वयं स्वभावत: किसी अन्य ओर आकर्षित होने से वह आवरण में अटक कर कुछ की कुछ प्रतीत हो रही हैं। सन्त मत में केवल इसी एक तत्व की छान बीन अध्ययन और उसके रुख को असलियत की ओर फेरने का यत्न किया जाता है। इसी एक शब्द पर भली प्रकार ध्यान देने ध्यान करते रहने और ध्यान करने के परिणाम से ल रहने में उसकी समझ आ जाती है। इसी का नाम ज्ञान,

और इसी के काम को कर्म और इसी को असलियत से सम्बन्ध जोड़ने को भक्ति कहते हैं। यह सुरत ही है जो सृष्ट की व - वस्था शरीर की व्यवस्था और अध्यात्म व्यवस्था में अपनी शक्ति और श्रेष्ठता का खेल दिखा रही है। यह बुरे से बुरे काम को शानदार और बड़ा बना देती है। कुरूप को रूपवान कर देती है। जो कुछ यहाँ है वह सुरत और तवज्जह ही से है और उसी का तमाम पसारा है सम्भव है लोग अपनी अन-समझी से इसको मन समझ लें मगर यह मन नहीं है। यह उससे भिन्न। मन उसके काम का हथियार है। वह मन की चोटी पर रहती है। साधारण आत्म विद्या की फिलोसफी इस पर प्रकाश नहीं डालती, क्योंकि उसकी पहुँच या विस्तार केवल मन ही तक है इसलिए इसे भली प्रकार समझ करके तब सन्त मत के अध्ययन की ओर ध्यान देना चाहिए जब तक यह समझ में न आयेगी तब तक असलियत के भेद का भी मिलना कठिन है। इस सुरत की समझ केवल एक शब्द तवज्जह पर निर्भर है, यद्यपि तवज्जह भी अधिक स्पष्ट शब्द नहीं कहा जाता। तवज्जह को जन साधारण की बोलचाल में एकाग्रता यकदिली एक चित्त और यक रूखी कहते हैं और यह गलत नहीं है, मगर वह इससे कुछ भिन्न है और सबका तत्व है। यह सुरत हमारे शरीर में दोनों आंखों के पीछे रहती है। इसको शक्ति और शैव तीसरा तिल शिव नेत्र और रूद्र की तीसरी आंख कहते हैं। सूफियों के यहाँ इसी को नुक्ता सवेदा कहते हैं और यही यहाँ उसके ठहराव का स्थान है। वह यहाँ रहकर अपनी मनो-वृत्ति द्वारा कुल देह में फैली हुई है इस दृष्टि से शरीर के अन्दर सर्वव्यापक कहलाती है। आँख इन्द्रियों के सिलसिले में

बीच की वस्तु है। यही बीच वाली वस्तु ऊपर और नीचे इसी भौतिक मण्डल से प्रभावित रहती है।

यहा कई प्रकार के भ्रम उत्पन्न होने का भय है। अब तक लोग आत्मा को किसी खास स्थान पर रहने वाला नहीं मानते और न उसका स्थान नियत करते हैं लेकिन सृष्टि के व्यवहार में हम हर जगह देखते हैं कि जो वस्तु व्यापक है वही घिरी हुई भी है। एक स्थान पर अपने मन्डल में स्थिति भी है और सर्वव्यापक भी है। एक स्थानी होती हुई वह सर्व स्थानी भी है सूर्य का सूर्यमंडल में विशेष स्थान है और किरणों द्वारा वह अपने मंडल में फैला हुआ भी है। तमाम प्राकृतिक शक्तियों की हर जगह यही दशा है। यहाँ तक कि अगर इस शरीर की इन्द्रियों की शक्ति पर ध्यान दिया जायेगा तो इन्हें भी एक स्थानी और सर्वस्थानी मानना पड़ेगा। दीपक एक कमरे में प्रकाशित है वह है तो एक ही जगह मगर उसका प्रकाश तमाम कमरे में फैला हुआ है। और भी इसी तरह समझ लो इसी प्रकार दिव्य शक्तियों का भी हाल है। विराट पुरुष विराट मँडल में एक स्थानी और सर्वस्थानी है। ब्रह्म भी ब्रह्म मंडल में एक स्थानी और सर्व स्थानी है। जब सबकी यही दशा हैं तो 'सुरत' की क्यों न होगी ? तब अर्थात पंच स्थल महाभूत - आकाश, वायु अग्नि जल और पृथ्वी तक में व्यापक और घिरे हुए होने की विशेषता है।

हमारे पाठकों को चाहिए कि जब तक इस 'सुरत' के विषय को भली प्रकार न समझलें तब तक आगे न बढ़ें। हम गोल-मोल या अस्पष्ट शब्दों में बातचीत नहीं करते न झूंठे झमेले के फंदे में फंसाते हैं। यहाँ जो कुछ कहा जाता है बिल्कुल साफ-साफ और सीदा-सादा। हाँ ! यदि हमारा लेख किसी की समझ में न आवे तो वह दूसरी बात है। समझाने

का प्रयत्न हम अवश्य करते हैं। हमारे ख्याल में इस सुरत का महत्व समझे बिना वेदान्त जैसे दार्शनिक रहस्य पर भी पार पाना असम्भव है। वेदान्ती सर्व व्यापक का बिना समझे बूझे ध्यान करते हुए अपने आपको ब्रह्म मानकर चुप और संतुष्ट हो रहते हैं। यह सच है कि इनके मानसिक भाव अवश्य ऊंचे हो जाते हैं मगर तत्व विवेक में कमी रह जाती है और काम ज्यों का त्यों नहीं बनता। हम स्वयं एक प्रकार से वेदान्ती हैं। वेदान्त विषय पर बहुत सी पुस्तकें लिखी हैं। हमारी वेदान्त की पुस्तक फिलोसफी (दर्शन)की सूखी हड्डियाँ नहीं है बल्कि अत्यन्त मनोहर और रसीली हैं। हमने वर्षों वेदान्त के रहस्यों को समझने में व्ययीत किये हैं और उनकी व्याख्या की है किन्तु हम स्वयं इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि 'सुरत' के समझ लेने ही से वेदान्त की अच्छी और पक्की समझ आ जायेगी।

हमने बताया है कि 'सुरत' का स्थान हमारी दोनों आँखों के पीछे है। अब इस पर ध्यानपूर्वक विचार करो। यह तो सबको ज्ञात है कि शरीर की असली शक्ति 'सुरत' या पिंडी आत्मा में है लेकिन यह किसी के भी न हृदयांकित है और न कराया जाता है कि सुरत का स्थान इस शरीर में कहाँ है। सन्तों ने वह स्थान बताया है और तुम आप भी ध्यानपूर्वक देखो कि यह ठीक है या गलत है। जब तुम पर किसी प्रकार का कष्ट आता है अथवा कोई परिश्रम का कार्य सुपुर्द किया जाता है तो क्या करते हो? क्या तुम आँखों को बन्द नहीं कर लेते और क्या उसी स्थान पर तवज्जह को स्थित करके किच-किचाते हुए वहाँ से मदद नहीं लेते? किसी लड़के को पत्थर उठाने का काम दिया गया। पत्थर भारी है। उठाये नहीं उठता। मगर लोगों के उत्साहवर्द्धक शब्द को सनकर जब

वह पत्थर को हाथ लगाता है, आँखों को बन्द करके उसी स्थान पर सुरत को जमाता है और उसी जगह सुरत के एकाग्र और स्थिर हो जाने या ठहर जाने से उसके हाथों में शक्ति आ जाती है। वह पत्थर को सरलता से उठाकर फेंक देता है। यह एक साधारण उदाहरण है जिसको तुच्छ बुद्धि का आदमी भी समझ सकता है। लड़का जानता नहीं मगर अनजाने सुरत से काम लेता है। यह हर प्राणी का प्राकृतिक कर्म है। इसी प्रकार जब सोचने समझने का समय आता है तो इसी क्रिया या विधि को काम में लाना पड़ता है। अध्यापक ने विद्यार्थी को गणित का कोई कठिन प्रश्न दे दिया। यह सोचने लगा। सोचते-सोचते आँखें बन्द हो गईं। उस स्थान पर पहुंचकर चित्त एकाग्र हो गया और उसने प्रश्न हल कर डाला। यह काम तुम स्वयं भी करते हो। हाँ इसके भेद के ज्ञाता नहीं हो सब ऐसा ही करते हैं। पशुओं तक में यह विशेषता मौजूद है लेकिन प्रगट रूप से इसका ज्ञान किसी को भी नहीं है। वर्तमान विज्ञान और चिकित्सा का ध्यान अभी इस ओर नहीं गया है लेकिन अंग्रेजी डाक्टर तक इस तीसरे तिल के महत्व को स्वीकार कर चुके हैं। यह स्थान 'सुरत' की बैठक का है। केवल इतना ही तुमको समझाना है। चूंकि यहाँ से ही राधास्वामी मत के सुरत शब्द योग का अभ्यास प्रारम्भ कराया जाता है इस कारण से और भी आवश्यक है कि परमार्थ और आत्मज्ञान के जिज्ञासू इसे समझ लें। सुरत के एकाग्र करने का यह काम केवल जाग्रत ही में नहीं किया जाता, किन्तु स्वप्नावस्था से यह अनजाने में होता रहता है। सोते समय भी स्वप्नावस्था में बहुधा गूढ़ रहस्य हल हो जाते हैं। यहाँ तक कि सुरत की व्यवस्था संक्षेप में हो चुकी।

(२) इस सुरत का भंडार इसी तुम्हारे शरीर में है। वह पूर्ण भंडार है। यह सुरत अंश है। जब तक सुरत की दृष्टि अंशों पर है तब तक उसे आंशिक दुःख सुख प्रतीत होतारहता है। जब उसकी दृष्टि कुल या भंडार की ओर चली जाय तो फिर वह दुख सुख से परे हो जाएगी। इसका भी समझना अत्यन्त कठिन है। मगर हम अपने तौर पर बिना समझाये-बुझाये मानने वाले कब हैं। भडार की ओ· रूझान होना भी स्वाभाविक कर्म है और इसी कारण से हम सुरत शब्द योग को प्राकृतिक साधन कहते हैं। तुम देखते हो कि जब कोई व्यक्ति कोठे से गिर पड़ता है, घाव हो जाता है या चोट लग जाती है तो अनजाने उसकी सुरत मस्तिष्क की ओर खिच जाती है, शरीर की ओर से ध्यान हट जाता है और बेपरवाई आ ज़ाती है। शरीर अचेत और अचल पड़ा है। घायल को घाव या चोट का भान तक नहीं है वह बेहोश है। इस बेहोशी को न सुख कह सकते हैं न दुःख,किन्तु वह एक ऐसे आनन्द की अवस्था है जिस पर दुःख सुख की पहुंच भी नहीं हो सकती। क्या कोई उसे वर्णन कर सकता है ? अब तक बहुत कम लोग ऐसे मिलेंगे जो इस भेद की व्याख्या कर सकेंगे। बात यह होती है कि चोट के लगते ही सुरत की धार ऊपर की ओर खिच जाती है, जहां देह का भान नहीं है और दुःख सुख कुछ प्रतीत नहीं होता। इन्द्रियों को स्वाद लगना अच्छा लगना सुख है तथा स्वाद बुरा लगना दुःख है। वहां इन्द्रियों की व्यख्या नहीं है। यह दशा आती तो सब प्राणियों पर है और सब को थोड़ा बहुत इसका तजुर्बा है मगर जानता कोई नहीं है। डाक्टर, हकीम और वैद्यो तक को भी यह भेद मालूम नहीं है और न वे इसकी व्याख्या कर सकते हैं। धार ऊपर की ओर खिच जाती है। इससे तो किसी को भी इन्कार न हंगा, क्यों

कि जिस समय बूझ वाली चेतन्य शक्ति से नस और नाणियों की गति का काम हो रहा था वह वहाँ से लुप्त सी दिखाई पड़ती है यदि लुप्त न हुई होती तो वह अपनी दशा को वर्णन करती। मगर जब वह वहां नहीं है तो वर्णन कौन करे उसका ठहराव तो अब किसी और ही स्थान पर है। वे अपने भंडार की ओर झुक गई। वे कहाँ चली गई ? अपने भण्डार में पहुँची अथवा भण्डार के नीचे के स्थानों में ? इसका पता हम यहाँ नहीं देते। केवल एक साधारण उदाहरण देकर खामोश होते हैं क्योंकि अभी हम को राधास्वामी योग की किताब में बहुत कुछ लिखना है।

(३) इस भंडार की ओर तवज्जस केवल ख्याल की सहायता से दिलाई जाती है। यही विचार कराना सत्गुरु का उपदेश कहलाता है। राधास्वामी मत का सत्संग केवल ख्याल दिलाने से सम्बन्ध रखता है इस मत में न कठोरता है न सख्ती न जोर है न जुल्म। जिसका जी चाहे सत्संग में आकर गुरू से सच्चे ख्याल ले और उनके अभ्यास में लग जाय। ख्याल का प्रतिदिन का अभ्यास उसके विश्वास को दिन प्रतिदिन दृढ़ करता चलेगा और जब वह अपनी आँखों से देख लेगा फिर सम्भव नहीं हैं कि कोई लंक और परलोक की शक्ति उसे बहका सके अथवा पथभ्रष्ट कर सके। पथ भ्रष्टता तो अन-समझी, अनदेखी, अनसुनी और अनजाने का परिणाम है। यहाँ मनुष्य के अनुसार उसकी हालत के दिखाने का प्रबन्ध है। न कहीं पढ़ाना है न लिखाना है, न भरमाना है, न भट-काना है। ख्याल सहानुभूति व प्रेम के साथ दिया जाता है। काम करो, काम में लगो और उसका परिणाम स्वयं देखोगे। अधिक कहने सुनने की आवश्यकता क्या है ? विचार ही मनुष्य को दुर्बल बनाता है और विचार ही शक्तिशाली बनाता है।

विचार ही से उसमें ईश्वर पूजा आती है। विचार ही से निर्बलता आती है और नास्तिक हो जाता है। विचार ही से वह दुनियाँ का पुजारी बनता है। इस कारण से राधास्वामी मत में व्यर्थ और अनुपयोगी कर्म धर्म से निस्सम्बन्ध रहकर अपने सेवक, उपासक, साधक और अनुयाइयों को केवल ख्याल दिला दिलाकर निजस्वरूप, सार तत्व और एकत्ववाद की ओर तवज्जह कराता है।

सार वजन की भूमिका के कथन की ओर ध्यान दो—मालूम होवे कि आदि शब्द कुल का कर्त्ता और स्वामी। और आदि सुरत यानी उसके अव्वल जहूर का नाम राधा है। इन्हीं का नाम सुरत और शब्द है और जब इनकी धार नीचे आई तब इसी आदि शब्द से और शब्द और आदि सुरत से और सुरत और शब्द से सुरत और सुरत से शब्द बराबर प्रगट होते आये और अपने-अपने मुकाम पर कायम हुए।

शब्द चेतन का प्राकट्य है। इसी पर सृष्टि की उत्पत्ति निर्भर है। यही कर्त्ता धर्ता सब कुछ है। शब्द की महिमा जैसा कि हम पहले कह आये हैं प्रत्येक धर्म में है। वेदों का प्रणव (ओउम), मुसलमान सूफियों का 'कुन' शब्द और ईसाइयों का 'कलाम' (शब्द उसी की साक्षी देते हैं आदि आदि। राधास्वामी मत में इस आदि शब्द को स्वामी कहा गया हैं। धार के रूप में शब्द का प्राकट्य होता हैं। हम बोलते हैं तुम सुनते हो। तुम्हारी जिभ्या से आवाज निकलती हैं और वह धार के रूप में जाती हुई तुम्हारेअन्दर समा जाती हैं। यह तुम जानते हो। आदि शब्द से जो धार निकली उसी की उल्ट व गोल धारा को राधा कहते हैं। जिस तरह स्वामी आदि शब्द था उसी तरह यह राधा आदि सुरत कहलाई।

इनके मेल से यह जगत रचा गया और शब्द से सुरत और सुरत से शब्द का क्रम निकला। हम सरत और शब्द से अपने अपने मण्डल बनाकर उसमें स्थित होते चले गये और उनके बीच में भिन्नता की सुरतें कायम होती गई और भी इसी इसी प्रकार होता गया।

रचना जब होगी धार के रूप में होगी और धार जब निक लेगी घेरे के रूप में चक्कर खा खाकर उसी घेरे में ठहरेगी। गति सदा गोलाकार में प्रकट होती हैं। यह सिद्धान्त हैं। दे को देखो **राधास्वामी मत की असली पुस्तक केवल मनष्य शरीर है** और सत्संग में उसी के अध्य यन की रूचि पैदा की जातीं हैं। वह किसी अन्य का शरीर नहीं बल्कि तुम्हारा अपना शरीर हैं। इसी शरीर के तमाम अंगों में धारो का ही व्यवहार हैं। मस्तिष्क से धार आई। वे स्थान-स्थान पर ही ठहरती और चक्कर खाती हुई भिन्न-२ इन्द्रियों, अंगो और नस नाड़ियों में ठहरती हुई आई व उसने भिन्न-भिन्न रूपता का दृश्य प्रस्तुत किया। हाथ में क्या हैं? नस नाड़ियों के सिलसिले में धार ही का तो प्रबन्ध हैं जब तक धार आती जाती हैं, तब तक वह पकड़ता जकड़ता हैं,मारता हैं सहराता हैं, तोड़ता हैं, जोड़ता हैं। थोड़ा सा पहुंचे पर मज बूत बन्द लगा दो, फिर देखो होता क्या हैं? काम करना तो अलग वह अपनी बंधी हुई मुट्ठी तक को न खोल सकेगा। और न खुली हुई मुट्ठी को बन्द कर सकेगा। यही दशा कुल इन्द्रियों की समझ लो। प्रत्येक इन्द्री में शब्द और सुरत की भिन्न-भिन्न शक्तियाँ मौजूद हैं और उनके भिन्न-भिन्न नाम हैं। असली धार जो मस्तिष्क से आती हैं उसे देखो कैसी-कैसी सूरतें बनाती हैं औरफिर भी ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर

आती जाती रहती हैं। इसी धार का आना जाना ही आवा-गमन हैं ये तो तुमको बहुत ज्ञात हो गया कि तुम स्वयं धारों से बने हो। तुम्हारी इन्द्रियाँ धारों की गोल-गोल गिरहें या ग्रन्थियाँ हैं।

ठीक इसी प्रकार जब आदि धार उतरी तो वह गिरहें बनाती हुई आई। इन समस्त गिरहों के अन्दर सुरत और शब्द और सुरत दोनों ही हैं। इनसे रहित एक भी नहीं है। चाहो इनकी परीक्षा कर लो। इन्हीं सुरत और शब्द के सिलसिले में मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि सब ही लिपटे हुए पड़े हैं। और उनके अन्तर्गत हैं।

एक ग्रन्थि सूर्य है। दूसरी चन्द्रमा है। तीसरी पृथ्वी है। चौथे देवता किन्नर, गन्धर्व आदि हैं। पाँचवी मनुष्य है। छठवी पशु, पक्षी, थलचर, जलचर आदि सब हैं आदि आदि। पंच भूत, आकाश आदि इसी चैतन्य धार की ऐसी ग्रन्थियाँ हैं जिनको तुम जड़ समझते हो। उसका भी प्राकट्य उसी से है। एक अपार समुद्र है जिसके क्षोभ के प्रभाव से अगणित बुलबुले बनकर एक विचित्र कारोगरी का तमाशा दिखा रहे हैं और देखने वालों को यह जगत राधास्वामी या आदि शब्द और आदि धार का दृश्य दिखायी दिया करता है।

यह हम कह क्या रहे हैं। कौन हमारी बातों को समझता है और कौन इसे समझकर मानता है। कोई कल्पना की परिभाषा को समझे बिना जगत को कल्पित कह रहा है। कोई 'सत्' शब्द को जाने बिना इस रचना को अनहुई मान रहा है बातें तो सबने सीख ली हैं मगर इसकी सचाई को कोई बिरला ही समझता है। क्या बातें बनाने वाला, स्वयं कल्पना वाला और स्वयं भी शारीरिक दृष्टि से अनहुआ नहीं है।

लेकिन क्या वह उसी की बातचीत नहीं कर रहा है और क्या बातचीत और कल्पना मिथ्या या अनहुई नहीं है ? राधा स्वामी मत न शब्दों के गोरखधन्धे में फंसाता है और न बातों के जाल बनाता हैं। जो हैं उसे वैसा मानकर चलो और अपने अन्दर देखो तब यह भेद खुलेगा। बालकों के नाखून से यह गुत्थी कभी नहीं सुलझाई जा सकती।

—:०:—

इस शब्द की महिमा के विषय में भूमिका इस प्रकार लिखता हैं:

'शब्द की महिमा हर एक मत में हैं मगर शब्द का भेद किसी मत के ग्रंथ या पोथियों में नहीं लिखा हैं इसी सबब से लोग इससे नावाकिफ रह गये। अब हुजूर राधास्वामी साहब ने तफसील शब्दों की और उनका भेद और बुजुर्गी का हाल खोलकर साफ-२ इस वाणी में लिखा हैं (वाणी से अभिप्राय सार वचन पोथी हैं)।'

ऊपर हम स्वयं ही शब्द के महत्व के विषय में कुछ न कुछ कह चुके हैं। अधिक कहने की आवश्यकता नहीं हैं। फिर भी अन्य धर्मों की पुस्तकों का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। इसमें कोई हानि नहीं हैं।

जो लोग शब्द के प्रमाण या साक्षी को ही मुख्य या सर्वोपरि मानते हैं वे यों ही मानने वाली नहीं हैं। विवश उनके भावों की पुष्टि करनी पड़ती है। सुनिये —

कठ उपनिषद २ ब०, १६ } (१) यह शब्द ब्रह्म हैं। इस शब्द का अभिप्राय सबसे ऊंचा हैं। जो इस शब्द को जानता है अपने मन की कामनाओं को पूरी करता हैं।"

बृहदारण्यक चतुर्थ ब्राह्मण चौथा अध्याय २१ } (२) "इसको जानकर ज्ञानी ब्रह्म का विचार करते हैं। वह बहुत से शब्दों का ध्यान न करे क्योंकि शब्द परेशान करते हैं।"

छाँदोग्य उपनिषद प्रथम अध्याय ४ खण्ड ३ } (३)........'उसने' शब्द अर्थात स्वर का सहारा लिया हैं।"

छाँदोग्य प्रथम अध्याय ४ खण्ड ३ } (४) 'वह जो इसको जानता है' इस (ओउम) अक्षर की स्तुति करता है और अमृत होकर अक्षर को प्राप्त होकर देवता हो जाता हैं।

नाद बिन्दु उपनिषद् ऋगवेदी } '(१) योगी सिद्ध आसन पर बैठकर वैष्णवी मुद्रा का अभ्यास करता हुआ दाहिने कान से अन्तरीय शब्द सुने। (२६)

(२) इस प्रकार शब्द का अभ्यास करने से वह बाह्य शब्दों से बहरा बन जायेगा। इन कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर वहकेवल १५दिन में तुरिया अवस्था को प्राप्त करेगा। (३०)

(३) पहिले उसको समुद्र, बादल, बाढ़ और भेरी के शब्द सुनाई देंगे। बीच में घंटा और शब्द सुनेगा। (३२)

(४) जब तक शब्द है तब तक आकाशी ध्यान है अशब्द के पश्चात ब्रह्म है। (४४-४५)

(५) जब तक शब्द है तब तक मन है शब्द के बन्द होते ही उन्मुनि अवस्था आवेगी। (४५-४६)

(६) वह अक्षर में समायेगा। यह अशब्द की दशा अन्तिम अवस्था हैं। (४६-४७)

(७) इसके पश्चात वह शंख या ढोल का शब्द नहीं सुनता। (५०-५१)

(८) नाद और बिन्दु बहुत हैं। वह बाह्य प्रणव में लय हो जाता है। (४८-४९

(९) जैसे मक्खी शहद को चूसती है वैसे ही वह शब्द

में लीन हो जाता है और इसका चित्त निश्चल बन जाता है।

(४६)

योगाचार्य का मत गेडम ब्ल्युस्की के वाइस आफ साइलेंस के हवाले पर पृष्ठ २२-२४।

(१) वह जो नाद (शब्द को सुनता है और अशब्द नाद को सुनता है धारणा की कैफियत को समझता है।" प्रथम अध्याय पृष्ठ १४ प्रथम पंक्ति।

(२) "पहिली आवाज बुलबुल के चहचहे की तरह मीठीहै
दूसरी चाँदी की झनकार है।
तीसरी समुद्र की लहरों की है।
चौथी बीन की आवाज है।
पांचली तुरही की है।
छठी बादल की गरज है।

जब सातवीं आवाज आती है, सब आवाजें मर जाती हैं। वह एक में लय हो जाता है और उसीमें रहता है। (२४-२५)

ईसाइयों की युहन्ना की अंजील प्रथम अध्याय प्रथम आयत।

"आदि में शब्द था। शब्द मालिक के साथ था। शब्द ही ने सब कुछ पैदा किया।"

सूफी मौलाना रूम के फारसी शेरों में भी आवाज (शब्द) के विषय में विस्तारपूर्वक वर्णन हैं। उन्होने यहाँ तक लिखा है कि –'पैगम्बर साहब ने कहा कि खुदा की आवाज मेरे कान के मानिन्द 'सदा' के पहुंचती है।

शाह नियाज का भी कहना है कि तमाम दुनियां आवाज से भरी है लेकिन तू अपने कान के दरवाजों को खोल। खोलने का अभिप्राय यह है कि तू सुनने के रास्ते को बन्द कर डाल।

ख्वाजा हाफिज के शेरों में यह भी उल्लेखनीय है कि आकाश से आवाज लगाई जा रही है और इतना भी पता है कि घण्टे की आवाज सुनायी देती है।

में लीन हो जाता है और इसका चित्त निश्चल बन जाता है।

(४६)

योगाचार्य का मत गेडम ब्ल्युस्की के वाइस आफ साइलेंस के हवाले पर पृष्ठ २२-२४।

(१) वह जो नाद (शब्द को सुनता है और अशब्द नाद को सुनता है धारणा की कैफियत को समझता है।" प्रथम अध्याय पृष्ठ १४ प्रथम पंक्ति।

(२) "पहिली आवाज बुलबुल के चहचहे की तरह मीठी है
दूसरी चाँदी की झनकार है।
तीसरी समुद्र की लहरों की है।
चौथी बीन की आवाज है।
पांचली तुरही की है।
छठी बादल की गरज है।
जब सातवीं आवाज आती है, सब आवाजें मर जाती हैं। वह एक में लय हो जाता है और उसीमें रहता है। (२४-२५)

ईसाइयों की युहन्ना की अंजील प्रथम अध्याय प्रथम आयत।

"आदि में शब्द था। शब्द मालिक के साथ था। शब्द ही ने सब कुछ पैदा किया।"

सूफी मौलाना रूम के फारसी शेरों में भी आवाज (शब्द) के विषय में विस्तारपूर्वक वर्णन हैं। उन्होंने यहाँ तक लिखा है कि —'पैगम्बर साहब ने कहा कि खुदा की आवाज मेरे कान के मानिन्द 'सदा' के पहुंचती है।

शाह नियाज का भी कहना है कि तमाम दुनियां आवाज से भरी है लेकिन तू अपने कान के दरवाजों को खोल। खोलने का अभिप्राय यह है कि तू सुनने के रास्ते को बन्द कर डाल। खवाजा हाफिज के शेरों में यह भी उल्लेखनीय है कि आकाश से आवाज लगाई जा रही है और इतना भी पता है कि घण्टे की आवाज सुनायी देती है।

अन्य धर्मों के इतने ही प्रमाण विश्वास दिलाने को पर्याप्त हैं। सन्त मत के सैकड़ों विभिन्न पंथों के ग्रन्थ शब्द की महिमा से भरे हुए हैं। चूंकि यह एक ही एक ही सिलसिले की शाखें हैं इनको वर्णन करना यहाँ व्यर्थ है। कबीर जोग और नानक जोग के पढ़ने वाले स्वयं भी जानते हैं।

राधास्वामी सार वचन में शब्दों का जो वर्णन आया है वह उस पोथी में विवरण सहित मिलेगा, अथवा इस राधास्वामी योग में समय-समय पर और स्थान-स्थान पर वर्णन किया जाएगा। भूमिका में इस प्रकार लिखा है :—

"बुलासा भेद शब्द का नीचे लिखा जाता है: –

"कुल की आदि राधास्वामी यानी कुल मालिक— यहाँ शब्द निहायत गुप्त हैं और उसकी उपमा यानी नमूना इस रचना में कहीं नही है। इसी शब्द से सत्पुरुष पैदा हुये।

शब्द पहला:—सत्पुरुष का शब्द जिसको सत नाम और सत्य शब्द भी कहते हैं और जिसकी कुदरत से सोहंग पुरुष, परब्रह्म, ब्रह्म और माया प्रगट हुये।

शब्द दूसरा:– सोहंग पुरुष का शब्द।

शब्द तीसरा: –परब्रह्म का शब्द जिसकी मदद से तीन लोक की रचना ठहरी हुई है।

चौथा शब्द: ब्रह्म शब्द जो 'प्रणव' है जिसने सूक्ष्म ब्रह्माण्डीय वेद और ईश्वरीय माया प्रगट हुई।

पाँचवा शब्द:—माया और ब्रह्म का शब्द जिससे त्रिलोकी की रचना का मसाला प्रकट हुआ और आकाशी वेद जाहिर हुये।

माया शब्द के नीचे विराट पुरुष का शब्द और जीव और मन का शब्द प्रगट हुआ।

इस विवरण की सूची की यदि व्याख्या की जाएगी तो कठिनाई से किसी की समझ में आयेगी क्योंकि राधास्वामी मत दुनियाँ का सबसे अधिक पूर्ण मार्ग है जब तक कि आदमी अन्य मत-मतान्तरों के हालात से परिचित न हो, इसके कथन को नहीं जान सकता। फिर भी हमको तो समझाना ही है। किसी न किसी प्रकार हम समझाने का प्रयत्न करेंगे। प्राणायाम का गायत्री मन्त्र जो हिन्दुओं में प्रचलित है उसमें सात भूमिकाओं या स्थानों का वर्णन है जो मनुष्य के अपने शरीर में मौजूद हैं। यद्यपि यह नीचे के स्थान हैं मगर इस सूची के साथ तुलना कर दिखाने में हानि नहीं है।

१—ओउम् भू। २—ओउम् भुवः। ३—ओउम् स्वः।
४—ओउम् महः। ५—ओउम् जनः। ६—ओउम् तपः।
७—ओउम् सत्यम्।

इनमें 'भू' जीव का स्थान है और उसी प्रकार के शब्द से सम्बन्ध रखता है। भुवः 'पिंडी मन का स्थान है। 'स्वः' ईश्वर या बिराट का स्थान है। 'महः' ब्रह्म पद 'जनः' परब्रह्म पद, तपः सोऽहंग पुरुष और 'सत्यम्' सत् पद या सत् नाम से तुलना (मुशाबा) है। यहाँ आकर मन्त्र के सातों स्थान समाप्त हो जाते हैं। आगे शुद्ध रूहानी (आध्यात्मिक स्थान अलख, अगम और राधास्वामी आते हैं जो राधास्वामी धाम से सम्बन्धित है। इस पारस्परिक तुलना से इतना तो समझ में आयेगा कि राधास्वामी मत यों ही तालीम नहीं देता। उसका नमूना वैदिक मार्ग में मौजूद है। हां लोग अनभिज्ञ हैं। इन स्थानों के भिन्न-भिन्न शब्द पुस्तक के सिलसिले में समझाते हुए दिए जाऐंगे।

—:o:—

शब्द के सम्बन्ध में साधारणतया जानकारी नहीं है। भूमिका में लिखा है: -

"इस वक्त शब्द के अभ्यास का जिक्र भी करते हैं तो सिवाय नीचे के शब्द के ऊंचे के शब्दों की उनको खबर भी नहीं है और बाज तो विराठी शब्द को ही कर्ता शब्द मानते हैं। और कोई-कोई माया और ब्रह्म के मिले हुए शब्द का सिर्फ जिक्र करते हैं। मगर उसकी महिमा और सिफ्त और उसके स्थान और अभ्यास की जुगत से जिस से वह प्राप्त होवे नावाकिफ हैं। इन सब शब्दों का हाल पोथी सार वचन) में तफसीलवार लिखा है।"

:o:—

शब्द शब्द में भेद है। शब्द का उल्लेख थोड़ा बहुत हर जगह है मगर अभ्यास की युक्ति गुप्त हो जाने से किसी को ज्ञात नहीं रहा कि कौन शब्द ऊंचे स्थान का है और कौन नीचे का। चूंकि चढ़ाई तो किसी को प्राप्त नहीं होती, इसलिये जानकारी के साथ-साथ विवेक नहीं आता। यह अज्ञानता है। सब ईश्वर, परमेश्वर, ब्रह्म और प्ररब्रह्म आदि को एक ही मान रहे हैं। यद्यपि उनके नामों पर ध्यान करने से साफ प्रकट होता है कि इनमें अन्तर होना चाहिए। इसी तरह इनके शब्द में भी भेद है मगर जिस प्रकार इन नामों को एक मानकर सन्तोष कर लिया गया वैसे भी शब्द का भी हाल हो रहा है

शब्द एक है मगर स्थान भेद से वह अनेक है। ऊंचे मंडल का शब्द अधिक शक्तिशाली और सूक्ष्म होता है। नीचे दर्जे का कमजोर होता है। बादशाह का कानून तो एक ही है जो सारे राज्य में व्यापक है, लेकिन बादशाह की आज्ञा मन्त्री का बयान, कर्मचारियों का कथन और निम्न श्रेणी के सेवकों में बातचीत में कितना अन्तर रहता है। गंगाजल की शक्ति, गुण और प्रवाह की आवाज में हर जगह भेद प्रतीत होगा जो

तो इन्सानी खिरका[1] हैं जो कि लोगों के समझाने बुझाने और उपकार और उद्धार के लिए धर कर संसार में प्रगट होते हैं जब यह मालुम हुआ कि यह पूरे सन्त या पूरे साध हैं तो फिर उनमें और सत्पुरुष या परब्रह्म में भेद नहीं माना जाता हैं इस वास्ते जब पूरे संत या पूरे साध प्रगट होते हैं तो उनके चरणों सेवक उनकी महिमा सत्पुरुष या परब्रह्म के बराबर करते हैं। और बाहर में उनकी पूजा और सेवा और आरती वगैरह उसी तौर से बजा लाते हैं जैसा कि मालिक की करनी चाहिए और इसी जाहिरी सरूप की सेवा और दर्शन और वचन व उनके चरणों में प्रेम प्रीति करने से और जो जुगत वह बतलावें उन के अभ्यास करने से सुरत यानी जीवात्मा मन और माया के जाल से अलहदा होकर आकाश में और उसके परे चढ़ती है अन्तर के सरूप यानी शब्द में पहुंचती है तब सच्चा और पूरा उद्धार जीविका होता है।"

इससे प्रगट है कि राधास्वामी मत वास्तव में प्रेम मार्ग और भक्ति पंथ है उसमें गुरु का प्रेम किया जाता है मगर यह जरूरी शर्त है कि गुरू या तो संत हो या साध तब काम बनेगा। अधिक स्पष्ट शब्दों में यह एकमात्र गुरु पूजा (मुर्शिद परस्ती) का मार्ग है। यह बात यहाँ इस वजह से साफ-साफ बता दी जाती है ताकि किसी को भ्रम न रहे।

गुरु पूजा का प्रारम्भ कब से हुआ इस विषय पर कुछ नहीं कहा जा सकता। उपनिषदों के ऋषियों के समय में इसकी गुप्त परिपाटी प्रचलित थी। गुरू और शिष्य के अतिरिक्त किसी अन्य ढंग से आत्म ज्ञान की तालीम नहीं दी जाती थी जैसा कि बृहदारणक आदि उपनिषदों के वर्णन से प्रगट हैं।

---

(१) मानवदेह।

तत्पश्चात जब बुद्ध धर्म का प्राकटय हुआ, बुद्ध भगवान ने चारोंओर से तवज्जह हटाकर अपने शिष्यों को अपने अर्थात बुद्ध के आदर्शो के मानने, पूजने और समझने का आदेश दिया जैनियों की तीर्थंकर पूजा में भी यही रहस्य है। इनके बाद जो जो रूहानी (आध्यात्मिक) मार्ग प्रचलित हुए, सबने गुरू महिमा पर जोर दिया। यहाँ तक कि हिन्दू जाति गुरू की जात (स्वरूप) को सब कुछ समझने लगी, जैसा कि नींचे के श्लोक से स्पष्टया प्रगट है :

गुरुब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देव महेश्वरः।
गुरु साक्षात परब्रह्मः तस्मैं श्री गुरुवेनमः ।।

यह आर्य प्रथा का साधारण नियम था। अनार्य दल इस को इस तरह नहीं मानता था। अन्त में यहूदियों में हजरत ईसा पैदा हुए, अपने व्यक्तित्व को पेश करके उसी की पूजा की रीति चालू की और अपने को ईश्वर का बेटा बताकर स्पष्ट शब्दों में हृदयांकित कराना चाहा कि"जो बेटे को नहीं मानता वह बाप को कभी नहीं मानता। पिता का जानना पुत्र के जानने पर निर्भर है।" मगर ईसाई फिर भी इस रहस्य से अनभिज्ञ ही रहे। आर्य मार्ग में एक पारसी धर्म भी है जो हिन्दुओं से निकला है। इसमें भी गुप्त रूप से यही विश्वास बैठाया जाता है। बाद को जिस समय अनार्य यहूदी लोग इस्लाम के प्रभाव में आये यह मार्ग जाता रहा। मगर उसमें पारसियों के नियमों में तस्सवुफ (अध्यात्म) के पैवन्द लगने से सूफियों का वर्ग उत्पन्न हो गया। इसने फिर गुरु पूजा के नियम को चालू किया और उनमें इसकी प्रथा चल खड़ी हुई. मगर सूफी सदा शरीयत वालों (कर्म काण्डी लोगों) से डरते थे, क्योंकि वे उचित और अनुचित ढंग से सताये जाते थे, मारे

जाते थे और संहार किये जाते थे। इस कारण वह दबे शब्द में उसका निमन्त्रण देते थे, और गुप्त बैठकों में अपने ढंग पर कुरान की व्याख्या करते हुए उसके महत्व को समझाते थे फिर भी सूफियों में जो पूर्ण पुरुष उत्पन्न हुए हैं वह स्पष्ट शब्दों में सचाई को स्वीकार करने से रुक न सके। नीचे हम दो-चार शैरों का अनुवाद लिखते हैं वह हमारी विचारधारा का समर्थक व प्रणाम समझे जायेंगे।

मौलाना रूम का कथन है:--

जात मुरशिद को किया तूने कबूल।
जात में उसके खुदा है और रसूल॥
औलिया का दिल है मसजिद बेगुमा।
उसमें रहता में खुदाये दो जहां॥
यह नवी का कौल है—हक ने कहा।
हूँ बुलन्दी और पस्ती से जुदा॥
आशमां में और जमी में अर्श में।
मैं नहीं रहता हूं कुर्सी फर्श में॥
तुझको मेरी गर है दिल से जुस्तजू।
दिग में मुर्शिद के मुझे पायेगा तू॥

यह कथन इतना स्पष्ट है कि व्याख्या की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार शम्स तरवेज और दूसरे महापुरुष सूफियों का हाल है। हाफिज शीराजी ने तो और भी जोरदार कथन किया है। जिसका भाव यह है: —

'यदि गुरू करे तो तू नमाज के बिछौने को शराब से तर कर दे, क्योंकि गुरु रास्ते के भेद और उसके स्थान से बेखबर नहीं है।'

रूहानियत(आत्मज्ञान का प्रारम्भ गुरू की सहायता बिना नहीं होता। यह कारण है कि प्रत्येक व्यक्ति को अन्त में गुरू

की सहायता लेनी पड़ती है। लेकिन कठिनाई यह है कि गुरू शिष्य का सिलसिला शैतान का जाल बन गया है। इस कारण से वह कम खतरनाक नहीं है। वाणी में जो संत सत्गुरु और साधगुरू के महत्व पर बल दिया गया है उसका यही कारण है कि कोई धोखे में आकर अपना जीवन बर्बाद न कर बैठे, वर्ना रूहानी नुकसान होता है। इस विषय पर मौलाना रूम का एक शैर है जिसका भाव यह है: —

"बहुत से लोग मनुष्य के रूप में इब्लीस शैतान) होते हैं इसलिये हर एक के हाथ में हाथ न देना चाहिए अर्थात हरएक को गुरू नहीं करना चाहिए।"

गुरू को ईश्वर की जात स्वरूप) मानना मुसलमानों में कुफ्र है। दूसरे पंथो के अनुयाई भी इसे अच्छा नहीं समझते। लेकिन गुरु गुरु में भेद होता है।

गुरू गुरू में भेद है, गुरु गुरु में भाव।
सोई गुरू नित वन्दिये,जो शब्द बतावे दाव ।।

गुरू को क्यों ऐसा मानना चाहिए, इस प्रश्न का उत्तर आगे दिया जायेगा, यद्यपि कहने के लिये भूमिका के मूल लेख में इसका वर्णन आ गया है।

लेकिन सन्त सत्गुरु या साध गुरू कम क्या मिलते ही नही हैं, फिर ऐसी दशा में जीवों को क्या करना चाहिए। वह हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें या कोई उपाय निकलें। इसका उत्तर इस प्रकार दिया गया है: -

'जब तक कि पूरे सन्त या पूरे साध न मिलें तब तक खोजी को मुनासिब है कि उनकी तलाश मे रहे। और जो कोई उनका सत्संगी यानी सेवक मिल जाय कि जिसने उनके दर्शन और सेवा बखूबी करी है और उनके भेद शब्द मार्ग का हासिल करके अभ्यास किया है तो उसमे प्रीति करे। और भेद मार्ग और मंजिल का और जुगत उसकी प्राप्ति की यानी तरीक अभ्यास का दर्याफ्त करके उसकी कमाई गुरू

करे। और सच्चा इष्ट राधास्वामी के चरणों में, जो कुल के मालिक हैं और जहाँ पहुँचने का इरादा हर नेक परमार्थों को मजबूत करना चाहिए, बांध कर अपना कार्य शुरू करे। जो प्रीति और प्रतीति सच्ची और शौक सच्चा और पक्का होगा तो जरूर कुल मालिक किसी न किसी समय पर चाहे जिस स्वरूप से दर्शन देकर इस जीव का काम अपनी दया और कृपा से बना देंगे।

विषय स्पष्ट है व्यर्थ क्यो बढ़ाया जाय

मगर सबसे कठिन बात यह है कि जन साधारण को **राधास्वामी नाम** से विरोध रहता है। वह इस नाम को स्वीकार करने से कतराते हैं और भांति-भांति की आपत्ति करते हैं। और नाम के भ्रम के कारण वह मत के धारण और स्वीकार करने में हिचकिचाहत करते हैं। उसके बारे में ऐसा लिखा है।

'राधास्वामी नाम कुल मालिक ने अपने आप प्रगट किया है। और जबकि हुजूर साहब के चरण सेवकों को कुछ दिन अभ्यास और सत्संग करने से कुछ कुछ उनकी भारी कुदरत और गति मालूम हुई और कुछ उन्होंने अपनी कृपा से थोड़ी अपनी पहचान बख्शी तब से उनको उसी नाम से जिस मुकाम यानी यानी राधास्वामी पद से कि वह आये थे पुकारना शुरू किया। और वे अपनी मौज से इस कलियुग में जीवों पर निहायत दया करके सन्त स्वरूप अवतार धारण करके प्रगट हुए।

"संत मत में वही कायदा जारी है जो और तरीकत यानी उपासना वालों के मत में जारी है। और वह यह है कि सतगुरू पूरे यानी मुरशिद कामिल में और मालिक कुल में भेद नहीं करते। और इसी सबब से उनको उसी नाम से पुकारते हैं जो कि असली नाम उस मुकाम यानी पद का है जहाँ से वे आये हैं। (शेष अगले अंक में)

"मनुष्य बनो" (हिन्दी मासिक पत्र) समाचार पत्र (केन्द्रीय) अधिनियम १९५६ नियम ८ फार्म ४ के अनुसार अपेक्षित आवश्यक सूचना

१—प्रकाशन का स्थान	:	अलीगढ़
२—प्रकाशन अवधि	:	मासिक
३—मुद्रक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
क—राष्ट्रीयता	:	भारतीय
ख—पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़।
४—प्रकाशक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़ ।
५—सम्पादक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़ ।
६—स्वत्वाधिकारी	:	श्रीमती सुधा मीतल
संरक्षक	:	परमदयाल फकीरचन्द्र जी महाराज

७—मैं सुधा मीतल घोषित करती हूं कि उपर्युक्त विवरण मेरी जानकारी और विवरण के अनुसार सही है ।

दिनांक १५ नव०, १९८८

सुधा मित्तल

प्रकाशक के हस्ताक्षर

मिलने का पता :—
'मनुष्य बनो' कार्यालय
शिव भवन, लेखराज नगर
अलीगढ़—२०२००१ (उ० प्र०)

अवैतनिक सहायक सम्पादक
महेशचन्द्र मित्तल
सम्पादक व्यवस्थापक व प्रकाशक
श्रीमती सुधा मित्तल

ग्राहक संख्या— 1769.

श्रीमान् Satya Narayan

Hno-1-8-813/1, Pendem Ghat Road

Secunderabad.

मुद्रक : श्रीमतीसुधा मित्तल, दयानन्द प्रिंटर्स, लेखराजनगर, अलीगढ़।

Regd. NO L—ALG.28